International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-3, Issue-3 May- June- 2016
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

रामायणस्य : महत्त्वम् हिन्दूसमाजे

डॉ गोविंद राम चरोरा

संस्कृत विभाग, महारानी श्री जया महाविद्यालय

भरतपुर, राज०

सार

मानव स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। आत्मरक्षा की दृष्टि से समुदाय बनाकर रहने की सह प्रवृत्ति से समाज प्रारम्भ हुआ जिसमें विभिन्न सदस्य अपने अधिकारों के साथ-साथ दूसरे के अधिकारों का सम्मान करते हैं। समय के प्रवाह के साथ-साथ समाज की विभिन्न मान्यताएं तथा परम्पराएं एक निश्चित आकार एवं स्वरूप धारण करती जाती हैं और उनमें युग धर्म के अनुकूल किंचित परिवर्तन होते रहते हैं। किसी विशिष्ठ खमय खण्ड की सामाजिक दशा तथा व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य सभी तत्वों का समावेश हो जाता है । किन्तु आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक, व्यवस्थाएँ अधिक विस्तृत होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में इनको ग्रहण नहीं किया जाता। वर्ण आश्रम, परिवार, नारी, स्थिति, शिक्षा, आहार, वसन, आभूषण, मनोरंजन आदि को ही सामाजिक दशा के अन्तर्गत विवेचित करना उपयुक्त है। रामायण कालीन संस्कृति की सामाजिक व्यवस्था में उपर्युक्त तत्व इस प्रकार प्राप्त होते हैं। परिवार परिवार ही समाज की एक लघुतम इकाई है और किसी भी सामाजिक विकास का प्रथम सोपान भी परिवार ही है। रामायण कालीन संस्कृति में परिवार का रूप पैतृक था। पिता ही परिवार का संरक्षक होता है। पिता अर्थात कुटुम्ब का प्रधानतम् व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना, परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है । पिता के आदेश को मानकर राम सम्पूर्ण राज्य को तृणवत् त्याग कर वन को चले गये और चित्रकूट में माताओं, गुरु, भाई पुरवासियों के समझाने पर भी पिता के अज्ञापालन को ही अपना परम् धर्म माना तथा भरत को भी पिता का सम्मान करने की सम्मति दी ।

मुख्य शब्द: रामायण कालीन संस्कृति की सामाजिक व्यवस्था, रामायण के वर्तमान स्वरूप, रचनाकाल रामायण की मूल रचना

परिचय

रामायण को आदि काव्य तथा उसके रचयिता वाल्मीकि को आदि कवि माना जाता है। कथा प्रसिद्ध है कि जब व्याध के बाण से विधे हुए क्रौञ्च के लिए विलाप करती क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन सुनने पर उसकी वाणी से अकस्मात् यह श्लोक फूट पड़ा । महर्षि की यही काव्यात्मक वाणी को सुनने ब्रह्मा जी उपस्थित हुए और उन्हें रामचरित लिखने के लिए उत्प्रेरित किया जिसका प्रतिफल अनुष्टुप छन्द आविष्कारक वाल्मीकि जी की रचना है ।

रामायण के वर्तमान स्वरूप में चौबीस हजार श्लोक हैं जिसमें विंशतिसहस्त्रीसंहिता' कहा गया है। यह सात काण्डों में विभाजित है । यथा- काल काण्ड, अयोध्या काण्ड, आरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दर काण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड । मूल रचनाकाल रामायण की मूल रचना तथा वर्तमान स्वरूप के बीच पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। मूल रचना महाभारत की अपेक्षा, प्राचीनतर दिखाई देती है

क्योंकि महाभारत में बाल्मीकी का उल्लेख ही नहीं है अपितु रामायण की संक्षिप्त कथा भी प्राप्त होती है। वहीं रामयण में महाभारत के पात्रों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । हरिवंश (अखिल भाग) में रामायण के नाटकीय प्रदर्शन की भी संक्षिप्त कथा प्राप्त होती है। इसके अलावा जर्मन विद्वान याकोबी तथा बेबर अश्वघोष (78 ई०) कृत्र बुद्धचरितम् तथा 'दशरथजातक' नामक रचना जिसमें रामायण का पूरा आख्यान ही है जिसकी रचनाकाल 300 ई० पूर्व का माना जाता है । विन्टर नित्स आदि के विचारों का अवलोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत के वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने से पूर्व ही रामायण प्रसिद्ध ग्रन्थ बन चुका था। चूँकि महाभारत का का अन्तिम स्वरूप चौथी शताब्दी के बाद का नहीं है। अतः इसके पूर्व ही रामायण के अन्तिम स्वरूप का निर्माण हो चुका था। इस संदर्भ में विन्टर नित्स का विचार है कि रामायण की मूल रचना ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में ही हुयी उसके वर्तमान स्वरूप दूसरी शताब्दी में तैयार हुआ था । यही मत अधिकांशतः स्वीकार किया जाता है । अतएवं इसका मूल रचनाकाल 400 ई० पूर्व में मानना ही न्याय संगत होगा ।

रामायण की उपलब्ध टीकाएँ एवं टीकाकार

रामायण पर अनेकाकेन टीकाएँ लिखी गयी हैं। इनमें रामवर्मन की तिलक टीका सर्वाधिक विख्यात एवं प्रामाणिक है। इसके अलावा माहेश्वरीतीर्थकृत- रामायण तत्वदीपिका, श्रीरामकृत- अमृतकटक, गोविन्दराजकृत शृङ्गारभूषण, रामानन्दतीर्थकृत, रामायणकूट, अहोवल्कृत वाल्मीकी हृदय, अप्पयदीक्षितकृत रामायण तस्त्पर्यसंग्रह, विश्वनाथकृत वाल्मीकि तात्पर्यतराणि, वरदराजमैथिलीभट्टकृत विवेकतिलक आदि उल्लेखनीय हैं । रामायण की विशेषतायें एवं उसकी उपयोगिता रामायण एक आदर्श महाकाव्य है। इसके आदर्श मानव मात्र के लिए अनुकरणीय हैं। यह संस्कृत भाषा का ही नहीं विश्व भाषा का आदि काव्य है जो परवर्ती काव्यों का प्रेरणास्रोत है। इसी से ललित साहित्य का सृजन होता है तथा यही उपाजीव्य एवं उपजीव्य ग्रन्थ कहा गया है । यह हमारे समक्ष उच्च नैतिक आदर्श प्रस्तुत करता है।

साहित्यिक महत्व के साथ रामायण का सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठ विशेषताओं का इसमें समावेश है। भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता गृहस्थाश्रम में है तथा गृहस्थ जीवन का ही विस्तृत चित्रण इसमें परिलक्षित है ।

दधान्व प्रति गृहणीयान्न ब्रूयात् किञ्चिदाप्रियम् ।

अपि जीवितहतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः ।।

वाल्मीकि की दृष्टि में राम ईश्वर नहीं, अपितु आदर्श मानव है जिनका चरित्र ज्वल है। आदर्श चरित्र का पूर्ण परिपाक हमें राम के व्यक्तित्व में दिखायी देता ही जीर्ण हो जाय बाहर अभिव्यक्ति का कोई अवसर ही न आये । प्रत्युपकार करने वाला अपने उपकारी के लिए विपत्ति की कामना करता है ताकि अपने प्रत्युपकार के उचित अवसर मिल जाय । यहाँ आदर्श मानवोचित गुण के कारण कितना उदार है राम का हृदय! वह कभी सोचते ही नहीं की हनूमान् पर विपत्ति आवे और वे इसका प्रत्युपकार कर सके ।

सम्पन्न हो गया। अब इसका उचित दाह-संस्कार करो। जैसे यह तुम्हारे हैं, मेरे भी हैं। शत्रु के प्रति यह उदार व्यवहार सर्वश्रेष्ठ है। रामायण के कथानक धीरोदात्त नायक के माध्यम से जीवन में उच्च आदर्श का दिग्दर्शन

कराया है। तत्कालीन समाज के लिए महान प्रेरणा बन गया है। वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में जो आचार निर्देश है उसमें पाप-पुण्य की सीमा बाँधी गयी है। पाप योनि में गिरने का भय था भयदान और दण्ड की धमकी से है जबकि रामायण ने यही कार्य चुटकी में कर दिया गया था। इसके आनन्दपूर्ण कथन से विभोर होकर पाठक श्रोता इस प्रकार मग्न हो जाते हैं। इसका प्रभाव अन्तस्थ की गहराई तक पहुँच जाता है। यह श्रद्धा स्वयं महानायक राम में हमें मिलती है। जब बनवासी लवकुश के मुख से संगीतमय रामकथा सुनकर अपने राज भवन से बाहर निकल कर कथा का श्रवण करने लगते हैं। यथा-

अहो गीतस्य माधुर्य श्लोकानां च विशेषतः ।

चिरनिवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षनिव दर्शितम् ।।

इन्हीं सब कारणों से रामायण युद्ध एवं विजय काव्य के साथ ही आलंकारिक भाषा में मानव-जीवन के सभ्यता, संस्कृति एवं विकास परम्परा का कुशल चितेरा और समस्त काव्यांगों का जनक भी माना जाता है। इसी से इसकी महत्ता सिद्ध हो जाती है। आज रामयण को एक पवित्रतम् धर्मग्रन्थ माना जाता है जिसकी तुलना गीता से ही की जा सकती है। रामायण के सिद्धान्त एवं आदर्श देश और काल की सीमाओं से आबद्ध नहीं हैं अपितु उनकी सार्वभौम मान्यता है ।

उद्देश्य

1. रामायण को आदि काव्य तथा उसके रचयिता वाल्मीकि को आदि कवि माना जाता है।

2. रामायण कालीन संस्कृति की सामाजिक व्यवस्था में प्राप्त होते हैं।

वाल्मीकि रामायण का स्वरूप

वैदिक काल के बाद आर्ष काल का युग आता है जिसके अन्तर्गत उल्लेखनीय र्षकाव्य है- बाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत् । रामायण महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदि काव्य है क्योंकि इसके पूर्व लौकिक छन्दों में निर्मित कोई काव्य दृष्टिगत नहीं होता, इस काल्मीकीय रामायण में भगवान राम, जगत्जननी सीता का उदात्त चरित्र वर्णित है, जो सात काण्डों में विभक्त है । दूसरा आर्ष काव्य महाभारत है। जिसमें कौरवों व पाण्डवों का समग्र जीवन वृत्त वर्णित है। यह बहुत बड़ा आर्षकाव्य है । इसमें कुल 18 काण्ड हैं। इसके सन्दर्भ में व्यास का यह कथन सत्य प्रतीत होता है-"यदिह्यस्ति तत्वसर्वं यदनेहास्ति तद्वा क्वचित्" अर्थात् जो कुछ इसमें वर्णित है। वह सर्वत्र विद्यमान है और जो कुछ इसमें नहीं है वह कहीं नहीं प्राप्य है। यह ग्रन्थ वस्तुतः अधर्मी कौरवों के ऊपर धर्मी पाण्डवों की विजय का प्रतीक मानते हैं ।

तृतीय आर्षकाव्य है; श्रीमद्भागवत । यह षोडषकला परिपूर्ण भगवान श्रीकृष्ण के समग्र जीवन को प्रस्तुत करता है। कृष्ण का अवतरण ही अधर्म के ऊपर धर्म की विजय है। आततायी, अधर्मी, दुराचारी कंस, जरासंध आदि का का बध श्रीकृष्ण ने धर्म की स्थापना की। यह श्रीकृष्णभक्ति शाखा का परम पुनीत ग्रन्थ माना जाता है। उपर्युक्त तीनों आर्षकाव्य माने गये हैं। तीनों का प्रणयन महर्षियों द्वारा हुआ है। तीनों ही महान ग्रन्थ हैं और तीनों के आधार पर आवान्तर कालीन काव्यकारों ने अपनी विविध कृतियों का प्रणयन किया है। वाल्मीकि

रामायण से मेरा शोध प्रबन्ध अभिप्रेत है और उसके सात काण्डों में से सुन्दरकाण्ड की समीक्षा ही मेरे शोध का लक्ष्य है ।

मानव स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। आत्मरक्षा की दृष्टि से समुदाय बनाकर रहने की सह प्रवृत्ति से समाज प्रारम्भ हुआ जिसमें विभिन्न सदस्य अपने अधिकारों के साथ-साथ दूसरे के अधिकारों का सम्मान करते हैं। समय के प्रवाह के साथ-साथ समाज की विभिन्न मान्यताएं तथा परम्पराएं एक निश्चित आकार एवं स्वरूप धारण करती जाती हैं और उनमें युग धर्म के अनुकूल किंचित परिवर्तन होते रहते हैं। किसी विशिष्ठ खमय खण्ड की सामाजिक दशा तथा व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य सभी तत्वों का समावेश हो जाता है । किन्तु आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक, व्यवस्थाएँ अधिक विस्तृत होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में इनको ग्रहण नहीं किया जाता। वर्ण आश्रम, परिवार, नारी, स्थिति, शिक्षा, आहार, वसन, आभूषण, मनोरंजन आदि को ही सामाजिक दशा के अन्तर्गत विवेचित करना उपयुक्त है। रामायण कालीन संस्कृति की सामाजिक व्यवस्था में उपर्युक्त तत्व इस प्रकार प्राप्त होते हैं। परिवार परिवार ही समाज की एक लघुतम इकाई है और किसी भी सामाजिक विकास का प्रथम सोपान भी परिवार ही है। रामायण कालीन संस्कृति में परिवार का रूप पैतृक था। पिता ही परिवार का संरक्षक होता है। पिता अर्थात कुटुम्ब का प्रधानतम् व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना, परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है । पिता के आदेश को मानकर राम सम्पूर्ण राज्य को तृणवत् त्याग कर वन को चले गये और चित्रकूट में माताओं, गुरु, भाई पुरवासियों के समझाने पर भी पिता के अज्ञापालन को ही अपना परम् धर्म माना तथा भरत को भी पिता का सम्मान करने की सम्मति दी ।

न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम् ।

स त्वयापि सदा मान्यः स वैबन्धु स नः पिता । '

परिवार में माता का स्थान वन्दनीय तथा सम्मानित था, किन्तु माता की अपेक्षा पिता की आज्ञा पालन करने वाला कोई भी पुरुष धर्म से भ्रष्ट नहीं हो-

रामायण में भ्रातृप्रेम तथा सौहार्द का जो अनुपम चित्रण हुआ है, आज तक आदर्श के धरातल पर नितान्त स्पृहणीयस है । भरत अनायास प्राप्त राज्य को बड़े भाई के सम्मान - प्रेम के कारण ग्रहण नहीं किया । 14 वर्ष तक राज्य का पालन धरोहर के रूप में किया। लक्ष्मण, भाई के प्रेम में राज्य, परिवार पत्नी सभी को पीछे छोड़कर चौदह वर्षों तक वनवास का कष्ट भोगा और लङ्का युद्ध में अग्रणी रहकर सर्वतः भाई की रक्षा की। इसलिए राम यह कह उठे -

देशे - देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।

तं तु देशे नपश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ।।

परिवार में पत्नी अथवा गृहिणी का स्थान कितना महनीय तथा गौरपूर्ण हो सकता है । पत्नी के रूप में स्त्री का चरित्र किस सीमा तक श्लाघनीय बन सकता है, रामायण की सीता को जाने बिना ज्ञात नहीं हो सकता । किन्तु इसके साथ ही कैकेयी जैसी पत्नी भी है। अपने नाम को निन्दा का पर्याय बना किया । पिता, भाई, पत्नी माता आदि के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण आदर्श सम्बन्ध के साथ-साथ रामायणकालीन संस्कृति में बहुविवाह की प्रथा भी प्रचलित थी । राम के अतिरिक्त प्रायः सभी राजाओं के पास अनेक पत्नियाँ थीं । अन्तःपुर में

सपत्नियों में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष भी हुआ करता था । राम अभिषेक का समाचार जानकर दासी मन्थरा ने कैकेयी को सपत्नी भय ही दिखाया था ।

उपस्थास्यसि कौशल्यां दासीतत् त्वं कृतांजलिः ।

पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति । ।

जब लङ्का में हनूमान् जी प्रवेश करके उस नगर घूम रहे थे। उस समय बहुत से राक्षसों के घरों को देखा जो परिवार के साथ निवास करते थे और एक दूसरे घरों से मिले हुए थे । तत्कालीन संस्कृत में परिवार में पुत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था पुत्र न होने पर सन्तप्त राजा सगर, दशरथ, कुशनाथ आदि ने तपस्या अथवा यज्ञ सम्पन्न किये थे। पुत्र ही वंश परम्परा को अविच्छिन्न रखता है । पुत्र होने पर ही पितृऋण से उऋण होना ही सम्भव है । पुत्र के द्वारा ही अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न होने का व्यक्ति को मोक्ष पद प्राप्त होता था । इसी कारण पुत्र की मंगल कामना के लिए माता-पिता अनेक कल्याण कृत किया करते थे । समाज में उत्कृष्ट चरित्र, महनीय गुणों तथा स्नेह सम्बन्धों का प्रारम्भ भी परिवार से ही होती है और इन उत्तमोत्तम आचरणों की शिक्षा भी परिवार में भी प्राप्त होती है। जिसका प्रतिफल कालान्तर में सामाजिक सम्बन्धों में हुआ है ।

धार्मिक परिस्थिति

किसी देश तथा समय को जानने के लिए उसके धर्म, धार्मिक संस्कृति और विश्वासों का ज्ञान होना आवश्यक है। सामाजिक-आर्थिक आदि संस्कृति के वाह्यरूप को ही स्पष्ट कर पाते हैं। उन सभी को किसी समय में धर्म में किसी विश्वासों और कर्मों पर बल दिया जाता है। रामायण कालीन धार्मिक संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट तथा उजागर हो पाता है । भारतीय संस्कृति के साथ यह तथ्य और भी इस संस्कृति का मूलाधार ही धर्म है। यहाँ मनुष्य एवं पशु का विभालन ही तत्व धर्म ही है अन्यथा धर्म रहित मनुष्य पशु के समान ही है । धर्मेणि हीनाः पशुभिः समानाः । भारत के प्रत्येक मानव सम्पूर्ण जीवन की जन्म से पूर्व या मृत्यु के पश्चात् विभिन्न धार्मिक क्रियायें धर्म का अनुसरण करती रहती हैं । भारतीय जीवन की अवांछित परम्पराओं में धर्म का रूप ही जीवन का मूल्य है । रामायणकालीन धर्म व्यवस्था को जान सकना आसान है। रामायण में आर्य-अनार्य संस्कृतियों एवं उसके आचार-विचार का चित्रण है । आर्य संस्कृति धर्म पर आधारित थी । रामायण के युद्धकाण्ड में- सीता को सम्मान सहित लौटा कर राम से सन्धि करने का प्रस्ताव करते हुए नाना माल्यवान ने रावण से कहा था कि ब्रह्मा ने सुर और असुर इन दो ही पक्ष की सृष्टि की है, दैवों का आश्रय धर्म है।' इस प्रकार रामायण आर्य संस्कृति का स्वरूप धर्ममय है । राक्षस संस्कृति अधर्ममय थी । रावण ने धर्म का नाश किया था, इसलिए रावण का वंश नष्ट हो गया था रामायण में राम का चरित्र धर्म का प्रतिमान एवं रावण का अधर्म का का दृष्टांत है । रामायण में धर्म का स्थान सर्वोपरि है तो भी कहा जा सकता है कि रामायण का सम्पूर्ण परिवेश ही धर्ममय है। राजा हो या प्रजा सभी के धार्मिक आचरणों का उल्लेख है जो रामायण के विभिन्न काण्डों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

जो धर्म के पालन में लगा है उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । कृतज्ञता, त्यवादिता, दृढव्रता हितकांक्षा आदि धर्म के गुण ही हैं । श्रीमद्भागवत् में कृष्ण ने दैवी सम्पत्ति के रूप में वस्तुतः धर्म के लक्षणों को ही प्रस्तुत किया है। धर्म ही रामायण के आर्य संस्कृति के रूप में दृष्टिगोचर होता है। धर्म की परिभाषा तो अनेक है। यह एक तरह से सम्पूर्ण जीवन प्रणाली है भले ही धर्म के अनेक स्वरूप स्वीकार किये जायं

परन्तु इसके दो ही मुख्य रूप हैं- प्रथम परलोक, अर्थात् भगवान् से सम्बन्धित । दूसरा कर्मकाण्ड तथा विश्वास यथा देवता, तीर्थ, प्रजा, मन्दिर आदि कर्मकाण्ड में विश्वास, आचार, सत्य, हिंसा, परोपकार, दान, दोनों स्वरूप कहीं मिलते हैं । युद्ध काण्ड के 28 वें सर्ग में राम के वर्णन में तथा धार्मिक मान्यतायें अत्यन्त सुस्पष्ट हो जाती हैं कि अयोध्या का कोई भी प्राणी नास्तिक नहीं थे। अग्निहोत्र, दान, यज्ञ में सभी की रूचि थी। सभी प्रजायें धर्मशील, धर्मात्मा और धर्मपरायण थीं । धर्म अधर्म के विषद स्वरूप पर विशेष प्रकाश पड़ता है। रामायण के सुन्दरकाण्ड जो धार्मिक मान्यतायें उसका वर्णन स्पष्ट दिखायी देता है। वैसे तो सम्पूर्ण रामायण धर्ममय ही है परन्तु उसमें सुन्दरकाण्ड विशेष उल्लेखनीय है । रामायण के राम में सभी देवताओं के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा की भावना विद्यमान है। प्रातः काल उठकर विभिन्न देवों की पूजा करना तथा धर्म चर्चा करना उनके जीवन का अंग है । वे विष्णु, शिव आदि की पूजा करते थे । किन्तु जनमानस में राम स्वयं विष्णु के अवतार हैं किन्तु रामायण में स्थल - स्थल पर शिव की अनुकम्पा एवं करुणा के अनेक प्रसङ्ग आये हैं । सूर्य, यम, वायु, ब्रह्म4, अग्नि, वरुण, सोम तथा अन्यदेव पूजित थे, रामायण में विभिन्न देवों की मनोतालिका मोक्ष की प्राप्ति के लिए तपस्या किया करते थे । मनृस्मृति में धर्म के दश उल्लेख मिलते हैं ।

अपना परिचय देते हुए तुम्हारे समीप आये इसका भली-भाँति रक्षण व पोषण करना तुम्हारा परम कर्तव्य है । इसमें तनिक भी सन्देह की बात नहीं है-

पितरौ निन्दितौ यैश्च निदैव्यक्ते न शंसय ।

धर्मो हि महतामेष शरणागत पालनम् ।।

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में तथा सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं को अत्यन्त प्रभावित किया है । कार्यकलापों में धार्मिक पाश्चात्य विद्वानों ने प्राचीन संस्कृति, सभ्यता तथा समाज, धर्म एवं राजनीति के ज्ञान के लिए रामायण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है । मनु स्मृति में भी धर्म के बारे में कहा गया है कि धर्म सामान्य लक्षण राग द्वेष से हीन, सज्जन, वेदज्ञ, विद्वानों के द्वारा सेवित और हृदय से जो अच्छी तरह जाना गया है वही है । इस प्रकार भविष्य पुराण में धर्म के लक्षण निम्नवत दिया गया है- फलाभिलास बन्ध में कारण होने के कारण प्रशस्त्र नहीं हैं। क्योंकि स्वर्गादि की कामना करने वाले काम्य कर्म किये जाने वाले कर्म पूर्व जन्म में कारण तथा आत्मज्ञान के साथ नित्यनैमितिक कार्यो से मोक्ष प्राप्त होता है । इच्छामात्र का प्रतिशोध भी नहीं किया जा सकता, वेद विहीन धर्म के विषय होने से संसार से अकामता, मनुस्मृति में धर्म के प्रमाण के लिए कहा है । सम्पूर्ण वेद धर्म के मूल हैं । वेदज्ञों की स्मृतियाँ और शील धर्म के मूल साधुओं का आचरण और चित्त की संतुष्टि धर्म के मूल हैं । वाल्मीकि रामायण में राम का चरित्र धर्म का प्रतिमान है तो रावण का चरित्र अहंकारी, अधर्म का दृष्टान्त है। रामायण में धर्म का स्थान सर्वोच्च था । रामायण का सम्पूर्ण परिवेश धर्ममय है । राजा हो या प्रजा सभी को आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा धार्मिक आचरणों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के विभिन्न काण्डों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है जो धर्म के पालन में लगा है। रामायण कालीन धर्म का ज्ञान तो इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक श्लोकों में है। जब हनूमान् जी अन्तःपुर में विचरण करते हुए सोती हुई स्त्रियों को देखकर भय से शङ्कित हो उठे। उनके हृदय में बड़ा भारी संदेह उपस्थित हो गया है कि परायी स्त्रियों को देखना धर्म विरूद्ध होगा और यह अत्यन्त विनाश कर डालेगा। मेरी दृष्टि अब तक कभी परायी स्थितियों पर नहीं पड़ी, परन्तु परायी स्त्रियों का अपहरण करने वाले पापी रावण का दर्शन हुआ। ऐसे पापी को देखना भी धर्म का लोप करने वाला होता है। इस प्रकार पुरुषार्थों की गणना करते समय "धर्म" का नाम

सबसे पहले आता है, क्योंकि वह मानव की सम्पूर्ण उन्नतियों का मूल है। धर्म से मनुष्य की उन्नति होती है । अधर्म से अवनति होती है।

इन तीनों अर्थों में धर्म जगत् का एक मात्र है । अतः धर्म को मुख्य पुरुषार्थ कहा जाता है। धर्म और अधर्म अर्थात् पुण्य और पाप इन दोनों का संयुक्त नाम अदृष्ट है। इसे मीमांसक अपूर्व कहते हैं । सुकृति और द्रष्कृत भी क्रमशः धर्म और अधर्म के ही नाम हैं । प्राणियों को जो भी सुख या दुःख प्राप्त होता है, उसका मूल कारण अदृष्ट है ।

येन यावान यथा धमरों वैह समाहितः ।

स एवं तत्फलं भुडक्ते तथा तावमुत्र वै ।।

धर्म की महिमा का प्रतिपाद शास्त्रों में किया गया है। परमात्मा ने इसे जगत् की सुव्यवस्था के लिए धर्मतत्व की रचना की । उस 'धर्मतत्व' का उपजाति प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों विधियों से होता है । प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति से साध्य होने वाले धर्म को निवृत्ति धर्म कहते हैं । धर्म प्राणियों की लोक यात्रा में अत्यन्त उपादेय है । संसार के सुखों का मूल स्रोत धर्म है ।

धर्मः व्युत्पत्ति करने करने पर समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करने वाला धर्म है, 'धर्म का पुण्य' अर्थ करने पर मन बुद्धि और इन्द्रिय आदि को पवित्र करने वाला धर्म है । धर्म आत्मा का गुण है । धर्म की उत्पत्ति कर्म से होती है। सत्कर्मो के आचरण से पुण्य की उत्पत्ति होती है। असत् कर्मो के आचरण से आय की व्युत्पत्ति होती है । जगत कर्मो के आचरण से पाप की उत्पत्ति होती है। उन्हें सुकृत और दुष्कृत भी कहा जाता है ।

निष्कर्ष

वाल्मीकीय रामायण के सम्यक् अनुशीलन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'रामायण' आदि कवि द्वारा रचित शतकोटि प्रविस्तर रामायण का संक्षिप्त रूप है। आदिकवि वाल्मीकि ने ब्रह्मा जी के आदेश से नारद द्वारा सुनायी गयी राम-कथा के आधार पर रामायण की रचना की है । रामकथा का उत्स वेद है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, आरण्यक उपनिषद आदि ग्रन्थों में भी राम दशरथ, इक्ष्वाकु आदि का नामोल्लेख मिलता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि रामकथा पहले से लोक प्रचलित रही है जिसे महर्षि वाल्मीकि ने अपनी काव्यप्रतिभा से सरल काव्य के रूप में उपनिबद्ध किया है।

महर्षि वाल्मीकि जी ने 'कामार्थगुणसम्पन्न' और धर्मार्थगुण विस्तारक रामायण की रचना करके श्रीराम के चरित्र का गुणानुवाद किया है। उन्होंने प्रारम्भ में काव्य की महिमा का गान किया है। प्रारम्भ में मानव जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं जिसका समावेश नहीं किया गया हो । रामकथा प्रसङ्ग में अनेक उपाख्यानों का समावेश करते हुए 'तपस्या' का महत्व भी प्रतिपादित किया गया है। रामायण के गौड़ तिपाद्य के रूप में जीवन के समस्त क्रिया-कलापों सन्निवेश करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने 'श्रीराम' को ही अपना मुख्य प्रतिपाद्य स्वीकार किया है। कहा है- वाल्मीकि रामायण में श्रीराम मुख्य प्रतिपाद्य हैं। महर्षि वाल्मीकि ने स्वयं वाल्मीकि रामायण ऐतिहासिक तथा पारलौकिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है। 'मोक्ष' मानव का परम पुरुषार्थ है क्योंकि इसकी प्राप्ति के लिए परमानन्द की प्राप्ति होती है। महाराज दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी आदि स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं। महर्षि शरभंग, शबरी, जटायु आदि को परलोक में उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । इसलिए

श्रीराम के लोकपावन चरित्र को आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके 'रामायण' पढ़ने के लिए महर्षि ने जन-जन का आह्वान किया है। रामायण प्रतिवादित जीवन पद्धति का अनुसरण करने पर आज भी समाज में व्याप्त अनाचार दूर हो सकता है । मानव-मानव में समानता और सौहार्द की वृद्धि हो सकती है। रामायण के स्वरूप का भी वर्णन किया गया है । बालकाण्ड, प्रत्येक काण्ड सर्गों में विभक्त है । इस प्रकार रामायण में स्वरूप वर्णन करने के बाद महाकाव्यत्व प्रतिपादित किया गया है ।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण तिलक, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, बी० एच० यू०, वाराणसी 1983
2. श्रीमद्भागवत् (श्रीधरी टीका), मोती लाल वनारसीदास, दिल्ली, 1988.
3. योगवशिष्ठ, मोती लाल वनारसीदास, दिल्ली, 1975.
4. कल्याण, हनुमान अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1975
5. रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. रामायण मीमांसा, स्वामी करपात्री जी, धर्म संघ, सम्बवत् 2034
7. कामिल बुल्के (रामकथा), इलाहाबाद, हिन्दी परिषद, प्रकाशन, 1999
8. प्रसन्नराघव (जयदेव), चौखम्भा, अमर भारतीय प्रकाशन वाराणसी, 1977. नारदीय पुराण, नाग पब्लिशर्स दिल्ली,1984
9. चन्द्रलोक शिखाव्याख्या, डॉ० चन्द्रमौली द्विवेदी भारतीय विद्या संस्थान 1991.
10. भट्टिकाव्यम् 1-8 सर्ग, डॉ० चन्द्रमौली द्विवेदी भारतीय विद्या संस्थान 1987.
11. उत्तर राम चरितम् (भवभूति), चौखम्भा संस्कृत सीरीज, आफिस वाराणसी, 1962
12. कालिदास का रघुवंश, चौखम्भा वि० भवन, वाराणसी, 1960.
13. हनुमान्नाटक, चौखम्भा संस्कृत सीरीजि आफिस, वाराणसी, 1978.
14. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला : चौखम्भा विद्या भवन,
15. वाराणसी, पंचम संस्करण, 1997.